आपत्ति में अरिहंत भक्ति

लेखक — डा० मुनीन्द्र कुमार जैन

भेत्तारं कर्मभूभृताम्

मोक्षमार्गस्य नेतारं



ज्ञातारं विश्वतत्त्वानां

वन्दे तद्गुणलब्धये

अमीरसन पब्लिशर्स ट्रस्ट डा-2/9 माडल टाउन, दिल्ली 9

1 विद्या नाम नरस्य रूपमधिकं प्रच्छन्नगुप्तं धनम् ।
विद्या भोगकरी यश सुखकरी विद्या गुरूणां गुरु ॥
विद्या बन्धुजनो विदेशगमने विद्या परा देवता ।
विद्या राजसु पूज्यते नहि धन विद्याविहीन पशु ॥

विद्या ही मनुष्य का सौन्दर्य है और वही उसका सुरक्षित धन है। विद्या ही इच्छित पदार्थ-कीर्ति तथा सुख को देने वाली होती है। विद्या ही गुरुओ का गुरु है। विद्या ही परदेश यात्रा म बधुजन के समान है और वही उत्कृष्ट देवता है। राज दरबार म विद्या की ही पूजा होती है धन की नही, अत विद्याहीन मनुष्य पशु के समान होता है।

2. दृष्टिपूत न्यसेत्पाद वस्त्रपूत पिबेज्जलम् ।
शास्त्रपूत वदेद्वाक्य मन पूत समाचरेत् ॥

आगे देखकर पैर रखना चाहिए वस्त्र स छानकर जल पीना चाहिए, शास्त्र के अनुसार वचन बोलना चाहिए और मन स पवित्र आचरण करना चाहिए।

3 अजरामरवत्प्राज्ञो विद्यामर्थ च चिन्तयेत् ।
गृहीत इव केशेषु मृत्युना धर्ममाचरेत् ॥

बुद्धिमान् पुरुष अपने को अजर अमर समझता हुआ विद्या और धन का सचय करे परन्तु धर्म साधन यह समझ कर करे कि मानो मृत्यु चोटी पकड़ हुए है।

4 प्रथमे नार्जिता विद्या द्वितीये नार्जित धनम् ।
तृतीये नार्जित पुण्य, चतुर्थे किं करिष्यति ॥

जिसने बाल्यवस्था म विद्या नही पढ़ी युवावस्था म धन नही कमाया और वृद्धावस्था म धर्म साधन नहीं किया वह मरते समय क्या करेगा ?

प्रथम संस्करण  १ जनवरी १९८२
११०० प्रतियां  मूल्य एक रुपया

डा० मुनीन्द्र कुमार जैन कृत २८वीं पुस्तिका

卐 आपत्ति मे अरिहन्त भक्ति 卐

जीवन मे 40 45 वर्ष तक मेरा स्वास्थ्य बहुत ठीक रहा। मेरे शरीर मे अपार शक्ति और मन म असीम्य साहस था। सामाजिक और धार्मिक कार्यों की लगन म सवेरे से शाम तक 17 18 घण्टे प्रति दिन काम करता रहता था। धीरे धीरे कई रोग मेरे शरीर में प्रवेश कर गए और अब मेरा स्वास्थ्य हाथ स निकल गया मैं कह नहीं सकता। आज 52 वर्ष की अवस्था मे ऊपर स देखने पर या डाक्टरी जांच स कोई दोष नजर न आने पर भी मैं चलने फिरने मे मजबूर हो गया हू। वही शरीर जिसके द्वारा सन् 1956 मे मैंने 100 मील की पैदल यात्रा करके बद्रीनाथ मन्दिर के दर्शन किए वही आज दस कदम चलने के लिए भी साथ नहीं देता।

मैं स्वय चिकित्सक हू और दिल्ली के सर्वश्रेष्ठ हकीम श्री भगीरथ प्रसाद, राजवैद्य प० परमानन्द भारत प्रसिद्ध एलोपैथिक चिकित्सक डा० के० एस० सिंह (जो अखिल भारतीय आयुर्विज्ञान संस्थान के डायरेक्टर भी रह चुके हैं) मेरे रोग का निदान करने म असफल रहे। क्या यह भाग्य की विडम्बना है या कर्मों का फल?

अनेक पंडितो तथा ज्योतिष्यो ने मेरे वर्ष फल और कुण्डलियां बनाई। रोग को दूर करने के लिए अनेक उपाय सुझाए पर गत 7 8 वर्षों म कुछ भी काम न आए। यहां तक की निराश होकर गत वर्ष मैंने कृषि मंत्रालय की 2500/ रुपए मासिक की सम्मान की नौकरी को समय स दस वर्ष पूर्व छोडकर पेन्शन ले ली।

जब स मैं कमरे की चहारदीवारी म बन्द हुआ हू तब स मेरा सम्पर्क समाज स केवल निजी पत्रों और समाचार पत्रो के माध्यम स है। किन्तु अब मुझे धार्मिक साहित्य के मनन का और मानसिक चिन्तन का सुखद अवसर मिला है। जब जब मैं अपनी अवस्था पर विचार करके निराश होने लगता

हूँ तब तब मुझे अपने विद्वान मित्रों डा० कस्तूरचन्द कासलीवाल जी—महावीर प० स्वरूप चन्द जी—धार प० गुलाबचन्द जैन—शान पार्क महरौली दिल्ली श्री विरधी लाल जी सेठी—जयपुर प० राजकुमार जी शास्त्री—मवाना, श्री सुबोध कुमार जी—आरा श्री सुखी लाल जी—पानीपत, श्री महेन्द्र जैन—दिल्ली, डा० नेमी चन्द—इन्दौर, श्री कल्याण कुमार 'शशि'—रामपुर प० सुमेरचन्द जी दिल्ली आदि से आशीर्वाद प्राप्त हुए।

मुझे देश भ्रमण की बहुत रुचि थी और इस बात का गौरव है कि काश्मीर से कन्याकुमारी तक और द्वारिका से [illegible] तक मैंने समस्त देश का सहज भाग में भ्रमण करके निःशुल्क चिकित्सा के द्वारा लाखों व्यक्तियों से निजी सम्पर्क स्थापित किया।

यदि मैं अपने रोगों को बतलाऊँ तो उनकी दवा आपत्ति का काम लिया जा सकता है। जब मनुष्य पर आपत्ति पड़ती है तब उसको धर्म याद आता है और हमारा धर्म है—अरिहंत भक्ति। प्रस्तुत पुस्तिका में मैंने आपत्ति में अरिहंत भक्ति के व्यावहारिक प्रभाव पर जो कुछ देखा और समझा उसी को प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया है। अरिहंत भक्ति के सम्बन्ध में मेरी धारणा को जागृत करने में जिन विद्वानों से मुझे मार्ग दर्शन मिला है उनमें श्री सुरेन्द्र कुमार जैन जौहरी—दिल्ली प० सुमतिचन्द जैन—ग्रीन पार्क-दिल्ली, प० जगन्मोहन लाल जी शास्त्री—कटनी, प० कैलाश चन्द जैन—वाराणसी श्री विरधी लाल सेठी—जयपुर डा० ज्योति प्रसाद जैन विद्यावारिधि—लखनऊ डा० लालबहादुर शास्त्री—दिल्ली आदि का मैं अत्यन्त आभारी हूँ। इन विद्वानों के विचारों का मैंने इस पुस्तिका में अनेक स्थानों पर सदुपयोग किया है। आशा है मेरी लेखनी के द्वारा पाठकों में अरिहंत भक्ति के प्रति निष्ठा बढ़ेगी और वे धर्म के मार्ग पर आगे बढ़कर अपनी आत्मा का कल्याण करने में समर्थ बनेंगे।

२ — कर्म गति टारे नाहीं टरे

माता के गर्भ में जो मात्र जीव निवास करता है। गर्भ में प्रवेश के बाद

ही माता के शरीर से प्राप्त पोषण द्वारा गर्भ म जीव का शरीर बढता है। यहीं स जीव पुद्गल परमाणुओ का सचय आरम्भ करता है। जन्म लेने क बाद यह प्रक्रिया और भी तेज हो जाती है। जसे जैसे बच्चे का विकास होता है वह केवल 'लाओ,' लाओ की रट लगाता है। इस ससार म आकर मनुष्य हर वस्तु का पाने की अभिलाषा करता है। अपनी वस्तु को खोने का भय ही उसक लिए दुख का कारण बन जाता है।

आचार्य कुदकुदाचार्य ने इसी विषय पर 'समयसार' नामक ग्रन्थ म लिखा है—

परमट्ठ बाहिरा जे त अण्णाणेण पुण्ण मिच्छति।
ससारगमणहेदु वि मोक्खहेऊ अजाणता ॥ 154 ॥

जो जीव परमअथ (धम माग) से बाहर हैं व ही मोक्ष के हेतु को न जानत हुए, ससार क हेतु होने पर भी अज्ञान स पुण्य की इच्छा करते हैं।

जन धम के अनुसार इस जीवन मे सुख और दुख के क्रम को एक पहिये के रूप म माना गया है। जिस प्रकार चलते हुए पहिये का एक सिरा क्रम स कभी ऊपर और कभी नीच आता जाता है, उसी तरह मनुष्य के जीवन म आन द की अनुभूति या कष्ट के अवसर आते-जाते हैं। इसी विषय म किसी कवि न कहा है— "जो आज एक अनाथ है, नरनाथ कल होता वही। जो आज उत्सव मग्न है, कल शोक से रोता वही॥'

इस सत्य का जानन के बाद भी यौवन, धन और शक्ति के मद म मनुष्य अपने जीवन म सम्यक व्यवहार को भूल जाता है। घडी की हर टिक टिक की आवाज उसके जीवन को अन्त के समीप ला रही है। फिर भी उसे अपनी आत्मा के उत्थान की कोई चिन्ता नही। जब तक शरीर म शक्ति रहती है वह समझता है कि यह सारा ससार उसके चलाए ही चल रहा है। इसी विषय म कवि के शब्दो म 'इस जीवन का गव क्या, कहा देहसो प्रीत? बात करता ढह जाता, बालू की सी भीति॥"

जब कार्यों मे सफलता मिलती है और जीवन मे केवल आनन्द और सुख

ही मिलता है उस समय न किसी को कम का विचार आता है और न ही अरिहंत का भक्ति का। ऐसे मनुष्य जिन्होंने जीवन में सुख ही सुख देखा है जरा सा कष्ट या आपत्ति पड़ते ही घबरा जाते हैं। उन्हें यह विचार नहीं रहता—'सुख दुख रेखा कम की टार सके न कोय। ज्ञानी भुगत ज्ञान से, मूरख भुगत रोय।।'

इसी विषय पर आशुकवि श्री कल्याण कुमार शशि की निम्नलिखित पंक्तियाँ ध्यान देने योग्य है —

> भोग बुरे भव रोग बढ़ाते इनकी ममता छोड़ दो
> त्याग तपस्या सदाचार से शुभ वृत्तियाँ जोड़ दो।
> अपरिग्रह में ही सुख है पग इसी दिशा में मोड़ दो
> चपल इन्द्रिया नाच नचाती इनकी भुजा मरोड़ दो।।

३ — मौत तो आयेगी ही, इससे डरना क्या ?

भगवान महावीर ने कहा है मृत्यु जीवन का एक आवश्यक अंग है। यदि मृत्यु न हो तो पुनर्जन्म भी न हो और आत्मा को न्याय करने का नया अवसर भी न मिलें।

यदि हम इस सत्य को ध्यान में रखकर चलें तो कोई कारण नहीं कि फिर हम आपत्ति और कष्टों का सामना करने के लिए धर्म रूपी सम्बल न मिले। इसी विषय पर जैनाचार्यों ने कहा है —

> धम्मो मंगल मुक्किट्ठं अहिंसा संजमो तवो।
> दयावितस्स पणमंति जस्स धम्मे सयामण।।

धर्म समस्त मंगल में प्रधान मंगल है। अहिंसा संयम, तप धर्म के अंग है। जो मनुष्य धर्म को पवित्र हृदय से धारण करता है उसको देवता भी नमस्कार करते हैं।

जब संसार में जन्म लिया है और उसकी अन्तिम परिणति मृत्यु में ही होनी है तो फिर ज्ञानी जन इतने व्याकुल क्यों हो? लाख उपाय करो फिर भी समय आने पर मात्र बंधु पैसा औषधि सब रक्खे रह जायगे। मौत से

तुम बच नही सकत— जास पास जोधा खड़े सभी बजावें गाल,
मध्य महन स ले चला एसा काल कराल।

अरे भाई मरा कौन? जीव मरा या शरीर? यदि शरीर मरा तो जीव फिर से नया जीवन धारण कर लेगा। फिर शोर और चिन्ता क्यो?

षट खडागम म लिखा है—जीवादि जीविस्सदि पुव्व जीविदालि जीवो।

अर्थात —जो तीनों काल जीता है वतमान मे जीता है, आगे जियेगा, पहले जीता था, ऐसा त्रिकाल स्थायी अस्तित्व वाला यह जीव का स्वरूप है। इस स्वरूप का दृढ निश्चय न होने से मरण भय बना रहता है। इस मरण स भय का कारण एक भ्रम है। जब मरण म भी आत्मा का अस्तित्व बना रहता है तो मृत्यु का भय क्या?

पूज्यपाद स्वामी ने 'समाधि तन्त्र' म कहा है कि मरण भी जागन स्वप्न सम्न झूठा है, यथा—"स्वप्ने दृष्टे विनष्टेऽपि न, नाशोऽस्ति यथात्मन । तथा जागर दृष्टेऽपि, विपर्यासा विशेषत" ।।।

अर्थात स्वप्न म जिस प्रकार दृष्ट शरीरादि का विनाश देखने पर भी विनाश नही माना जाता उसी प्रकार जागत अवस्था में भी दृष्ट शरीरादि का विनाश होन पर आत्मा का नाश नही होता। दोनो अवस्थाओ म जो विपर्यास है उसम कोई भी विशेषता नही है।

प० जीवन लाल शास्त्री जी न अपन लख "जीवन मत्यु एक चितन' मे लिखा है कि—

जागन मे साक्षात वतमान 10 प्राणो का वियोग तथा निद्रा म स्वप्न मे होन वाला वियाग इन, दोनो म जो विभिन्नता देखन मे आती है सो इस मिथ्या कल्पना जाल म हमारा मोह अज्ञान भ्रम ही कारण है कि कल्पना करके एक स भयभीत और दुखी होन हैं और दूसर को स्वप्न की बात मानकर निर्भय हो जात हैं। जड पदार्थों व उनके गुण पदार्थो से अपन को अधिक जोडने का ही यह दुष्फल है कि हम तत्व विचार से सवथा विमुख और निश्चित रहकर नाना आपदाओं को निमन्त्रण देते हैं।

दूसरो की मत्यु क विचार के साथ अपनी आने वाली मत्यु पर भी पहले स उसका विवक करके निर्भय होना आवश्यक है। बिना विवक किये निश्चित रहना तो चिंता का कारण है। ज्ञानी वही है जो विवेक और पुरुषार्थ स तत्व विचार म लगे।

सम्यक्ज्ञान दीपिका म लिखा है जसे मूख लोग कोई नये न्याय दवारा कहता कि अग्नि जलती है। परन्तु पूण दृष्टि से दखिये तो अग्नि स्वभाव म जलती रहा है। तसे ही असत्य व्यवहार दवारा दखिये तो ज्ञानमयी जीव मरता है। पर निश्चय सत्य जीवत्व स्वभाव म देखिये तो न जीव मरता है और न जन्मता है।

जन्म मत्यु व्याधि बाल वद्ध युवा आदि अवस्थाए यथाथ म पुदगल सयोग जनित हैं पर अनादि सस्कारित मूढ़बुद्धि मे यह जिनवाणी प्रवश नही पाती। जो प्रतिबुध जिनवाणी ममज्ञ आत्मानुभावी हो जात है वे आत्मानुरागी जन दढ़ निश्चयी आत्मा में सतुष्ट रहकर शरीरादि वियोग जनित दुख के पात्र नही बनत। धन्य हैं वे ज्ञानी जिन्ह सयोग वियोग म जीवन मरण म सममाव जागत रहता है। प० टोडरमल जी न इस समभाव को समस्त दुखो की सत्ता का नाशक कहा है।

४ – शुद्धआतम अरु पच गुरु जग मे शरण दोय

विदवान पाठकगण जब ससार म आत्मा ने शरीर धारण कर लिया और अपने आयु कम क अनुसार जीवन को सुख और दुख म बिताना ही है तो सम्यग्ज्ञान सम्यग्दशन और सम्यग्चारित्र के दवारा कर्मों की निर्जरा करक आत्मा को बुरे कर्मों के प्रभाव स सुरक्षित किया जा सकता है। हमारे अनेक विद्वान कहत हैं, जो जो देखी वीतराग ने सो सो होसी वीरा रे। अनहोनी कभी न होय काहे होत अधीरा रे॥ इस विषय म अन्य विदवानो का मत है कि वीतराग ने देखा तो बहुत कुछ पर जो कुछ उन्होने देखा उसका बहुत लघु भाग उनकी वाणी मे खिरा। जितना उनकी वाणी स खिरा उसका कितना लघु भाग गणधर न ग्रहण किया और उसका कितना

ाय माग जिन्दगी मे सुरक्षित रहा इसका अनुमान लगाना कठिन है। इसलिए उनके अनुसार क्या क्या दखो वीतराग न, क्या क्या होगी वीरा र वीतराग की वाणी म तू हृर ल जग की पीरा र।' अर्थात क्या होने वाला है क्या हो रहा है और क्या हो सकता है इसकी चिन्ता छोड़ो। अरिहंत पर श्रद्धा रखो और धर्मानुसार आचरण करो यही सर्वश्रेष्ठ माग है। इसी विषय म प० प्रकाश हितैषी शास्त्री द्वारा लिखा एक कथानक इस प्रकार है -

रानी के द्वारा अनेक षडयन्त्र करने पर भी जब सेठ सुदर्शन अपने शील से नहीं डिगे तो रानी ने अपना बदला चुकाने के लिए कहा कि सेठ हमारा शील भंग करना चाहता था। राजा ने रानी की बातो पर विश्वास करके सेठ सुदर्शन को सूली पर चढ़ाने की सजा सुना दी, किन्तु सूली भी सिंहासन बन गई। सेठ सुदर्शन के शील का प्रभाव देखकर राजा ने सेठ जी से क्षमा याचना करते हुए पूछा—आपने किस देवी देवता की आराधना की थी, जिससे सूली सिंहासन बन गई।

सेठ जी ने कहा—' मैं तो अपने सच्चे देव शास्त्र, गुरू और धर्म की ही आराधना करता रहता हूँ। किसी अन्य देवी देवता की आराधना से क्या वे किसी का सुधार बिगाड़ कर सकते है? यदि कर सकते होते तो उन्होने देशभूषण, कुलभूषण मुनियो की भयंकर उपसर्ग से रक्षा क्यो नहीं की? लोह के तप्त आभूषणों से जलते हुए पांचों मुनिवर पाण्डवो को क्यो नहीं बचाया? यदि वे जिन शासन के भक्त थे तो घानी मे पिलते हुए 500 मुनियो की रक्षा करनी चाहिए थी? किन्तु नहीं की। क्योंकि उनमे इस प्रकार की सामर्थ्य ही नहीं है और न वे किसी को कुछ हानि लाभ पहुँचा सकते हैं।"

जैन मन्दिरो म प्रति दिन सब से प्रथम देव शास्त्र गुरू की ही पूजा की जाती है। प० द्यानत राय जी कृत पूजा की स्थापना का पदय इस प्रकार है—

प्रथम देव अरहत सुश्रुत सिद्धा तजु गुरू निग्र थ महत मुकतिपुर प थजु।
तीन रत्न जगमांहि सु ये भवि ध्याईय, तिनकी भक्ति प्रसाद परम पद पाईये।

अर्थात् अरिहंत दव द्वादशागश्रुतरूप सिद्धा त और महान निग्र थ गुरु जो मुक्ति रूपी नगरी के राहगीर है जगत म य तीन रत्न हैं। भ य जीवों को इनका ध्यान करना चाहिये और इनकी भक्ति के प्रसाद स परम पद मोक्ष प्राप्त करना चाहिय।

इन तीन रत्नो मे प्रथम रत्न अरिह त दव है जो वीतरागी सवज्ञ और हितोपदेशी होते हैं। एक मात्र यह जिनेन्द्र देव ही सच्चे देव हैं जिसकी ऐसी श्रद्धा है वही सच्चा जन है और जिसकी देव विषय श्रद्धा ठीक नहीं है, भल ही वह उन्हें पूजता हो कि तु वह सच्चा जन नहा है।

५ – पचों की बात सर माथे, पर नाला यहीं गिरेगा

कुछ दिन पहल की बात ह एक सज्जन मेरे पास आए और बोले कि आप जन लोग तो नग्न मूर्ति का पूजते हो। कि तु माडल टाउन म ही आपके दिगम्बर जन मन्दिर म एक देवी की मूर्ति लगी हुई है जिसके सामन बहुत सारे दीपक जलते रहते हैं और ज्यादातर जना वेदी पर स्थापित दिगम्बर मूर्तियों की जगह उस देवी को ही क्यो पूजत हैं? यहा तक कि एक भक्त ने उस मूर्ति के श्रृ गार के लिए असली सोन का मुकुट और असली मोतियो की माला सजायी है?

अपन मित्र की बात सुनकर मरा ध्यान दिल्ली क सठ क कू च के छोटे दिगम्बर जन म दिर म स्थापित पद्मावती की मूर्ति की ओर गया। एसा ही तमाशा दिल्ली क श्री दिगम्बर जन लाल मन्दिर म भी होता है। जब मैं जवान था और मेरी शादी नहीं हुई थी तब मैं भी इस तरह की पूजा म बडी रुचि लता था। मैं समझता था कि पद्मावती की मूर्ति के आगे रोज दीपक जलाना और झम झमकर आरती गाना बड़ा चमत्कारी काय है। पूजा करन वाले अ य लाग इस विषय मे अनेक कल्पित चमत्कारी गाथायें भी सुनात थ।

अब तो इस विषय पर कुछ जन पत्रो मे एक दूसरे विद्वान पर छींटा कसी भी आरम्भ हो गई है। दक्षिण के एक विद्वान न हुमच की पद्मावती के चमत्कार का जन पत्रो मे बडे जोर शोर स प्रचार किया। जयपुर के 'जैन दशन" मे भी पद्मावती आदि देवियों के चमत्कार की वकालत की गई। किन्तु इस प्रकार की पूजा के पीछे केवल आडम्बर ओर झूठा दिखावा ही अधिक है।

मैं स्वय अपन शारीरिक कष्ट के उपचार के लिए अनक व्यक्तियो से परामश करता रहा हू। दिल्ली की कैलाश नगर कालोनी म एक सज्जन ने बताया कि उनके भाई को पद्मावती की सिद्धि है और वे मरे कष्ट को दूर करन का उपाय बता सकते है।

मेरे रोग का विवरण पूछन के लिए वे मुझे अपने भाई के पास ल गए। उनके भाई ने धूप और दीप जलाकर अपने घर मे रखे पद्मावती के चित्र की पूजा आरम्भ की। धीरे धीरे वे आँखें लाल करके अपना सिर हिलाने लगे। जैसे कि उनके ऊपर देवी की सवारी आ गई हो। वैसे मुझे किसी भी बात का विश्वास नही हुआ किन्तु उन्हाने जो उपाय बताया था, वह धार्मिक विधि के अनुसार ही था अर्थात् प्रत्येक रविवार को भगवान पाश्वनाथ की मूर्ति के आगे एक वष तक एक पाव घी का दीपक जलाओ। वष भर तक यह काय करन पर भी रोग की दशा मे कोई अन्तर नहीं आया।

जन धर्म मे देवो का क्या स्थान है इस विषय म प० कैलाश च द जो शास्त्री के विचार आग दिए जात हैं।

"दव गति के वो दव हैं वे तो देवगति नामक कम के उदय स दवगति म जन्म लेन स देव हैं। उनम और सच्चे देव जिनेन्द्र म तो जमीन आसमान का अन्तर है।

स्वगति के देवो के भी चार भेद हैं 1) भवनवासी, 2) व्यन्तर, 3) ज्योतिषी, और 4) वैमानिक। इनमे स आदि के तीन निकृष्ट देव कहलात हैं। सम्यग्दृष्टि मर कर इनम जन्म नही लेता। पद्मावती-धरणेन्द्र

भवनवासी जाति के देव हैं जो प्रथम नरक के ऊपर पाताल लोक में निवास करते हैं। भगवान पार्श्वनाथ के द्वारा दिये गये णमोकार मंत्र के प्रभाव से जलते हुए नाग-नागनी मर कर धरणेन्द्र पद्मावती हुए। कहाँ भगवान पार्श्वनाथ और कहाँ निकृष्ट जाति के देव धरणेन्द्र पद्मावती। किन्तु लक्ष्मी के लोभी लोग भगवान पार्श्वनाथ की उपेक्षा करके पद्मावती को पूजते हैं और मंदिरों में वेदियां बनाकर उन्हें स्थापित करते हैं। कोई कोई हमारे निर्ग्रन्थ साधु और आर्यिका माता भी कुदेव पूजा का प्रचार करते पाये जाते हैं। वे सांसारिक सुखों और लाभों की प्राप्ति के लिए भगवान पार्श्वनाथ को ही पूजने का उपदेश न देकर पद्मावती को पूजने का उपदेश देते हैं और इस तरह मोक्षपुर के पथिक बनकर मिथ्यात्व का प्रचार करते हैं।

कुदेव कहने से लोग जैन धर्म से विमुख अन्य मतों के देवों को ही कुदेव समझते हैं। वे यह नहीं जानते कि जैन धर्म के उपासक रागी द्वेषी देव भी कुदेव हैं। सच्चे देव तो एक मात्र वीतरागी अरिहन्त देव ही हैं और वे ही पूज्य हैं। जैन धर्म में रत्नत्रय सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र ही पूज्यता का चिन्ह है। इसी के कारण आचार्य, उपाध्याय और साधु परमेष्ठी पूज्य माने गये हैं क्योंकि वे एक देश से रत्नत्रय के धारी होते हैं। देवगती के देव देवियों में तो चारित्र का लेश भी नहीं होता। तब पूज्यता का प्रश्न ही नहीं है। देव गति के देवों में भी लोकांतिक देव सर्वार्थसिद्धि के देव और सौधर्म इन्द्र तथा उसकी इन्द्राणी पूज्य माने जा सकते हैं क्योंकि ये सब मनुष्य भव धारण करके नियम से मोक्ष जाते हैं।

विद्यावारिधि डा० ज्योति प्रसाद जैन के अनुसार जैन परम्परा में तो धर्मपथ की प्रथम सीढ़ी सम्यग्दर्शन है। व्यवहार सम्यग्दृष्टि भी देव मूढ़ता गुरुमूढ़ता एवं लोकमूढ़ता से मुक्त रहने की चेष्टा करता है। सच्चे देव शास्त्र गुरु के अतिरिक्त अन्य किसी की भी पूजा उपासना का निषेध है। कोई व्यक्ति सम्यक दृष्टि भी हो किन्तु असयमी हो तो भी एक सच्चा जैन उसके साथ साधर्मीवात्सल्य तो बरतेगा किन्तु उसकी वंदना अर्चना नहीं करेगा।

कोई भी सम्यग्दृष्टि मनुष्य मर कर भवनत्रिक में जन्म नहीं लेता। इनकी स्त्रियों में भी उत्पन्न नहीं होता। अतएव भवनत्रिक के अधिकांश देवी देवता मिथ्यादृष्टि होते हैं। कल्पों में देवी देवता भी सभी सम्यग्दृष्टि नहीं होते। यों तो देवगति की सभी निकायों में कारण पाकर किसी को भी सम्यक्त्व की प्राप्ति हो सकती है किन्तु संयम भाव तो किसी भी देव या देवी को इस पर्याय में कभी हो ही नहीं सकता। यह अवश्य है कि कई देवी देवता चाहे वह किसी भी धर्म के हों। उनको जिन धर्म, जिन देव तथा जिन भक्तों में अनुराग हो सकता है। शासन की रक्षा प्रभावना आदि में तथा भक्तों के प्रति उपकार करने और दुष्टों का निग्रह करने में भी वे कभी-कभी सक्रिय देखे जाते हैं। उनके प्रति साधर्मी वात्सल्य अनुराग एवं आदर सत्कार का भाव होने में बाधा नहीं है किन्तु देव शास्त्र, गुरु के समकक्ष मानकर उनकी पूजा उपासना करना मिथ्यात्व है। अनेक दिगम्बराचार्यों ने बार बार इस तथ्य का उद्घोष किया है। इतना ही नहीं कई श्वेताम्बराचार्यों ने भी उसका समर्थन किया है।

६ – महान साधकों द्वारा आपत्ति मे अरिहंत भक्ति

गत अर्थात् पिछले अध्याय में हमने अनेक विद्वानों के विचार प्रस्तुत करके अरिहंत भक्ति के महत्व पर प्रकाश डाला है। जैन धर्म वीरों का धर्म है। वीर पुरुष संकट और कष्टों का सामना धैर्य और साहस के साथ करता है। कायर पुरुष मुसीबत में दूसरों का सहारा ताकता है। जब कभी आपत्ति पड़ती है तब भी सच्चा जैन अरिहंत भक्ति के द्वारा ही उसका निवारण करता है।

जैन इतिहास में अनेक विद्वानों ने आपत्ति के समय केवल अरिहंत के स्मरण से ही संकटों पर विजय पाई। इन अवसरों पर उन्होंने अरिहंत स्मरण के रूप में जिन भक्ति स्तोत्रों की रचना की जो आज भी अनेक व्यक्तियों का मार्गदर्शन करने में समर्थ हैं। इनमें से कुछ प्रमुख रचनाओं का वर्णन आगे किया गया है।

1 भक्तामर स्तोत्र — इस सुप्रसिद्ध संस्कृत स्तोत्र की रचना आचार्य मानतुंग द्वारा की गई थी। धार्मिक विवाद में हारने पर क्रोधित होकर राजा ने आचार्य मानतुंग को 48 द्वार वाले गृह में 48 ताले लगाकर बंद कर दिया। इस रचना में 48 श्लोक हैं। उस समय धर्म की रक्षा और प्रभावना हेतु आचार्य श्री ने भगवान आदिनाथ की इस स्तुति की रचना की थी जिससे 48 ताले स्वयं टूट गये थे। भक्तामर का प्रतिदिन पाठ समस्त विघ्न बाधाओं का नाशक और सब प्रकार मंगलकारक माना जाता है।

2 कल्याण मन्दिर स्तोत्र — कल्याण मंदिर स्तोत्र के रचयिता श्री कुमुदचंद्राचार्य हैं। इसमें पार्श्वनाथ की स्तुति होने से इसका नाम पार्श्वनाथ स्तोत्र भी है। परन्तु स्तोत्र 'कल्याण मंदिर' शब्दों से प्रारम्भ होने के कारण इसका यही नाम पड़ गया है। कहा जाता है कि उज्जयिनी नगरी में वादविवाद में इसके प्रभाव से एक अन्य देव की मूर्ति से श्री पार्श्वनाथ की प्रतिमा प्रकट हो गई थी। इस स्तोत्र की अपूर्व महिमा मानी गया है। इसके पाठ से समस्त विघ्न बाधायें दूर होती हैं तथा सुख शांति मिलती है।

3 एकीभावस्तोत्र — इस स्तोत्र की रचना आचार्य वादिराज ने की थी। आचार्य वादिराज महान् वाग्मी विजेता और कवि थे। उनकी पार्श्वनाथ चरित्र, यशोधर चरित्र, एकीभाव स्तोत्र, न्याय विनिश्चय विवरण, प्रमाण निर्णय ये पांच कृतियां प्रसिद्ध हैं। उनका समय विक्रम की 11वीं शताब्दी माना जाता है। चौलुक्य नरेश जयसिंह (प्रथम) की सभा में उनका बड़ा सम्मान था। प्रख्यात वादी होने से वे 'वादिराज' के नाम से प्रसिद्ध हुए।

निस्पृही आचार्य श्री वादिराज ध्यान में लीन थे। कुछ द्वेषी व्यक्तियों ने उन्हें कुष्ट-ग्रस्त देखकर राज सभा में जैन मुनियों का उपहास किया जिसे धर्मप्रेमी राजश्रेष्ठी सहन न कर सके और भावावेश में कह उठे कि हमारे मुनिराज की काया तो स्वर्ण जैसी सुंदर है। राजा ने अगले दिन महाराज के दर्शन करने का विचार रखा। सेठ ने महाराज से सारा विवरण स्पष्ट कह कर धर्म रक्षा की प्रार्थना की। महाराज ने धर्मरक्षा और प्रभावना

हेतु 'एकीभाव स्तोत्र' की रचना की जिससे उनका शरीर वास्तव में स्वर्ण सदृश हो गया। राजा ने मुनिराज का दर्शन करके और उनके रूप को देख कर चुगल खोरों को दण्ड दिया। परन्तु उत्तम क्षमाधारक मुनिराज ने राजा को सब बात समझाकर तथा सबका भ्रम दूर कर सबको क्षमा करा दिया। इस स्तोत्र का श्रद्धा एवं पूर्ण मनोयोगपूर्वक पाठ करने से समस्त व्याधियां दूर होती हैं तथा सारी मनोकामनाएं पूर्ण होती हैं।

4 विषापहार स्तोत्र — इस संस्कृत स्तोत्र के रचयिता महाकवि धनञ्जय थे। काव्यमीमांसा जैसे महाग्रन्थ के कर्ता राजशेखर ने कवि धनंजय की बड़ी प्रशंसा की है। आपकी एक महत्वपूर्ण रचना धनंजय नाममाला है।

विषापहार स्तोत्र में भगवान ऋषभदेव की स्तुति है। यह स्तुति गम्भीर, प्रौढ और अनूठी उक्तियों से भरपूर है। हृदय समुद्र को मथकर निकाला हुआ अमृत है। इसमें शब्दों का माधुर्य एवं अर्थों का गाम्भीर्य देखने को मिलता है। स्थान-स्थान पर अलंकारों की छटा छिटकी हुई है। धनंजय का समय विद्वानों ने आठवीं शताब्दी निश्चित किया है।

कविराज धनंजय पूजन में लीन थे। उनके सुपुत्र को सर्प ने डस लिया। घर में कई बार समाचार आने पर भी वह निस्पृह भाव से पूजन में पूर्णतया तन्मय रहे और पुत्र की कोई सुध नहीं ली। बच्चे को विष चढ़ रहा था। उनकी पत्नी ने कुपित होकर बच्चे को मन्दिर में उनके सामने लाकर रख दिया। पूजन से निवृत्त होकर उन्होंने तत्काल भगवान के सम्मुख ही 'विषापहार स्तोत्र' की रचना की। इधर स्तोत्र की रचना हो रही थी उधर पुत्र का विष उतर रहा था। स्तोत्र पूरा होते-होते बालक निर्विष होकर उठ बैठा। इससे धर्म की अपूर्व प्रभावना हुई। इस स्तोत्र का पूर्ण लाभ लेने के लिए श्रद्धा और मनोयोग आवश्यक है।

नोट — उपरोक्त स्तोत्रों के मूल संस्कृत पाठ और हिन्दी भाषा अनुवाद के विस्तृत ज्ञान के लिए प० हीरालाल जी जैन कौशल द्वारा सपादित 'पूजन पाठ प्रदीप" मूल्य 12/- रुपए, श्री कृष्ण जैन, मंत्री श्री पार्श्वनाथ दिगम्बर जैन मन्दिर, सब्जी मण्डी डाकखाने के पीछे दिल्ली 7 से मगाकर पढ़ें।

७ — अरिहंत भक्ति द्वारा आत्म साधना का मार्ग

अरिहंत भक्ति द्वारा मनुष्य के अन्दर विशुद्ध आत्मिक तेज उत्पन्न होता है। इस तेज के प्रभाव से आपत्तियों और कष्टों को सहन करने की शक्ति बढ़ती है। सामान्य मनुष्य जब शीत ऋतु में कम वस्त्रों में ठण्ड से सिकुड़ता रहता है उस समय आत्मिक तेज के कारण दिगम्बर मुनि को नग्न रहने पर भी सर्दी में कष्ट नहीं होता। आचार्य वादिराज के अनुसार —

आत्मज्योतिर्निधिरनवधिर्द्रष्टुरानन्द हेतु।
कर्मक्षोणी पटलपिहितो यो न बाह्य परेषां
हस्ते कुर्वन्त्यनतिचिरतस्तं भवद्भक्तिभाज
स्तोत्रैर्बन्ध प्रकृति परुषोद्दाम धात्री खनित्रै ॥

अर्थात् — परमात्मा की स्तुति द्वारा अपनी वह आत्म ज्योति प्रकट होती है जिसका दिव्य रूप आनन्द का अक्षय भण्डार होता है। जिस प्रकार चट्टानों के नीचे गढ़ा हुआ स्वर्ण हस्तगत करने के लिए चट्टानों को कुदालों तथा अन्य साधना द्वारा तोड़ा जाता है उसी प्रकार कर्म के आवरण से आच्छादित अपना प्राकृतिक रूप प्राप्त करने के लिये भगवान की भक्ति उत्कृष्ट साधन है। अन्य कोई साधन कार्यकारी नहीं है।

श्री समन्तभद्राचार्य उपर्युक्त अनुभव का इस प्रकार समर्थन करते हैं —

स्तुति स्तोतु साधो कुशल परिणामाय स तदा
भवेन्मा वा स्तुत्य फलमपि ततस्तस्य च सत
किमेवं स्वाधीन्याज्जगति सुलभे श्रायसपथे
स्तुयान्न त्वा विद्वान् सततमभिपूज्य नमिजिनम् ॥

अर्थात् परमात्मा की स्तुति भक्त के परिणाम को शुभ रूप संस्कार करने में उत्तम साधन है। यह आवश्यक नहीं कि भगवान् या उनकी कोई मूर्ति सामने हो अथवा स्पष्टदेव प्रसन्न होकर मनोवांछित वरदान देने की स्थिति में हो तब ही स्तुति की जाए। फल तो हमारे अपने परिणामों का होता है। परमात्मा की निराकार कल्पना का आश्रय लेकर उसके ध्यान में

तल्लीन हो जायें, अथवा उसकी किसी साकार मूर्ति के निमित्त से परिणामों को निमग्न किया जाय। प्रयोजन तो अपने परिणामों को दिशा रागादि विभावों की ओर से हटा कर आत्म गुणों पर केन्द्रित करने का है।

आत्मगुण सर्वोत्कृष्ट विकसित अवस्था में परमात्मा के अनन्त गुण हैं, जिनका थोड़ा बहुत विचार करना मात्र ही तो स्तुति कहलाती है। वास्तव में ऐसा नहीं है। क्योंकि परमात्मा के गुण अनन्त हैं भाषा माध्यम से कहे ही नहीं जा सकते और स्तुति या प्रशंसा का भाव है कि थोड़े गुणों को बढ़ा चढ़ाकर वर्णन किया जाय। लेकिन परमात्मा के गुणों का कुछ लेशमात्र भी कथन और भक्तिपूर्वक इसके नाम का उच्चारण मात्र भी संसारी जीवों को पवित्र करता है। इसलिए यह जानते हुये भी कि परमात्मा की यथार्थ में स्तुति कर सकना असम्भव है हम सबका अपना अपने तरीके से अपनी-अपनी शक्ति के अनुसार भगवान नाम कीर्तन आत्मशुद्धि के लिए अवश्य ही करना चाहिये।

प० सुखमाल चन्द जैन के अनुसार प्रत्यक्ष ही परमात्मा की सत्ता तो सर्वोत्कृष्ट है। हम जैसे क्षुद्र संसारी जीवों द्वारा अपनी अपनी कल्पना के अनुसार परमात्मा के लिये मंदिर निर्माण और उन मन्दिरों मस्जिदों तथा गिरजाघरों में अपने अपने विश्वास के अनुसार परमात्मा की पूजा से क्या परमात्मा को कुछ लाभ है? अथवा हमारे कुछ भाई जो उसकी सत्ता का स्वीकार नहीं करते हैं और उसके लिये मन्दिर निर्माण तथा पूजा ध्यान कीर्तन आदि को अनावश्यक और व्यर्थ मानते हैं, उनका अज्ञान और उनके द्वारा की गई निन्दा क्या परमात्मा को क्षुब्ध और रुष्ट करती है? नहीं।

सच्चा परमात्मा वीतराग है तथा उनको किसी से कोई द्वेष नहीं है। इसलिये न इनकी पूजा में कोई मतलब है न निन्दा में। हम जो उनके पुण्य गुणों का स्मरण करते हैं हम तो अपने ही चित्त में से पाप का मैल निकाल कर उसको पवित्र करने के लिए परमात्मा का चिंतन करते हैं।

८ – अरिहंत भक्ति द्वारा देह व्याधियों से मुक्ति

विभिन्न स्तोत्रों के आधार पर जब हम क्रमशः परमात्मा के सम्बन्ध में

भक्तिपूर्ण विचारधारा स्थापित करके अपने और अपने पाठकों के हृदयों को पवित्र तथा निर्मल करने का प्रयत्न करेंगे।

उद्भूत भीषण जलोदर भार भुग्ना
शोच्यां दशामुपगताश्च्युत जीविताशा।
त्वत्पाद पंकजरजोमृत दिग्धदेहा
मर्त्या भवंति मकरध्वज तुल्यरूपा॥

हे जितेन्द्र! भीषण जलोदर आदि असाध्य रोगों से पीड़ित प्राणी जिनकी शोचनीय दशा हो गई है और जिन्होंने जीवन की आशा छोड़ दी है आप के चरण कमलों की रज रूपी अमृत के स्पर्श मात्र से वे क्षण भर में कामदेव के समान सुन्दर रूप के धारक हो जाते हैं।

आचार्य वादीराज इस सबंध में कहते हैं कि

आनन्दाश्रुस्नपितवदनं गद्गदंश्चाभिजल्पन्
यश्चायेत त्वयि दृढमनाः स्तोत्रमन्त्रं भवन्तम्।
तस्याभ्यस्तादपि च सुचिरं देहवल्मीक मध्यात्
निश्कास्यन्ते विविध विषम व्याधयो काद्रवेयाः॥

हे जिनेन्द्र! जो भक्तिगत गद् गद् स्वर से हर्षजनित अश्रुओं से अपने मुख को धोता हुआ आपकी आराधना स्तोत्र रूपी मंत्रों से इन्वित होकर करता है उसके शरीररूपी बिल में से चिरकाल से घुसे नाना प्रकार की विषम व्याधि रूपी सर्प अभ्यस्त होने पर भी भाग खड़े होते हैं।

कवि धनंजय का यह विश्वास है कि —

विषापहारं मणिमौषधानि मन्त्रं समुद्दिश्य रसायनं च
भ्राम्यन्त्यहो न त्वमितिस्मरंति पर्यायनामानि तवैव तानि।

हे जिनेन्द्र! विष को असर दूर करने के लिए मूढ़ मानव मणि मंत्र, रसायन और औषधियों की तलाश में जगह जगह मारे मारे फिरते हैं। बड़ा खेद है कि वे आपका स्मरण नहीं करते हैं और यह नहीं जानते हैं कि मणि मंत्र रसायन और औषधि आप ही के पर्यायवाची नाम हैं।

यह शरीर तो वास्तव मे रोगरूपी सर्पों का बिल है —

रोग उरग बिल वपु गिण्यो, भोग भुजग समान।
कदली तरु ससार है त्याग्यो सब यह जान॥

जड पौद्गलिक परमाणुओ द्वारा निर्मित होने के कारण इसका पूरण गलन स्वभाव है —

देह अचेतन चेतन म, इन परणति होय एक सी कस ?
पूरण गलन स्वाभाव घरे तन, मैं अज अचल अमल नभ जसे॥
नानो जीव निवारि भ्रम तम, वस्तुस्वरूप विचारत ऐसे॥
देह अपावन अथिर घिनावन याम सार न कोई।
सागर के जल सा शुचि कीजै तो भी शुद्ध न होई॥

नश्वर होने क कारण काल आने पर इसका नष्ट हो जाना अवश्यम्भावी है। ससार की कोई भी शक्ति प्राकृतिक नियमों के विपरीत क्रिया कराने म समर्थ नहीं है। यह अत्यन्त अपवित्र, मल मूत्र, रुधिर, मास, आदि का चलता-फिरता पिण्ड है।

दिपे चाम चादर मढी हाड पीजरा देह।
भीतर या सम जगत म और नही घिन गेह॥

इसस स्नेह करना भी उचित नही है। जसे किसी मांस-मशीन मे गति शील करन का य त्र लगा दिया जाये, उसी प्रकार जीवात्मा सहित यह शरीर है जो अत्यत बीभत्स, अपवित्र, नश्वर और कष्टदायक है। हे जिनन्द्र! आपन यह हितकारक बात बताई कि एसे शरीर से स्नह करना वृथा है।

पोषत तो दुख दोष करे, अति शोषत सुख उपजाव।
दुजन दह स्वाभाव बराबर मूरख प्रीति बढावै॥

कि तु यही शरीर धर्मक्रियाओ का भी साधन है। इसलिए जब तक शरीर त्याग का उचित अवसर नही प्राप्त होता है तब तक उचित भरन-पोषण द्वारा इसको निरोग दशा मे रखना तथा सावधानी से रक्षा करना आवश्यक है। उपसग, दुर्भिक्ष, बुढापा और असाध्य रोग यह शरीर त्याग के उचित अवसर हैं।

भक्तामर, एकीभाव और विषापहार स्तोत्रों के रचयिता ऋषियों की उपयुक्त वाणी का यही तात्पर्य है कि जिन मामलों में चाहे जो भी सम्भावना रोगमुक्त होने की हो सकती है उनमें यद्यपि अशुभ कर्मोदय के कारण व्यवहार में यथोचित चिकित्सा के अभाव में असाध्य समझी जा रही हो, जिनेन्द्र के स्तवन द्वारा कर्मोदय के प्रभाव नष्ट हो जाने से रहस्यमयी रीति से रोग से मुक्ति प्राप्त हो जाती है।

स्तवन द्वारा शुद्ध कर्म के बंधन मात्रा के अनुसार तुरत फल प्रगट होना है स्तवन जादू नहीं है। तथापि उपयुक्त वाला जादू जैसी लगती है क्योंकि आज तक हम रोगों का इलाज मणिमंत्र और रसायन द्वारा ही करने कराने के अभ्यस्त रहे हैं। पहले कह चुके हैं कि स्तवन द्वारा परिणामों में परिवर्तन आने से, चित्त के निर्मल होने से हृदय पवित्र हो जाने से और आत्मज्योति प्रगट हो जाने से कार्माण शरीर में विशेष परिवर्तन हो जाता है जिसका असर तुरंत ही हमारे तैजस और औदारिक शरीरों में भी प्रगट होना स्वाभाविक और अवश्यम्भावी है।

मानव देह तीन शरीरों से निर्मित है—औदारिक, तैजस और कार्माण। औदारिक शरीर यह स्थूल दृष्टिगोचर शरीर है जिसमें ही सब रोगों की अभिव्यक्ति होती है। मृत्यु के समय केवल यह औदारिक शरीर ही निस्तेज होकर यहां छूट जाता है तैजस और कार्माण सूक्ष्म शरीर के साथ यह जीवात्मा अन्य गति में जन्म लेने के लिये चला जाता है। वास्तव में सूक्ष्म कर्म वर्गणाओं द्वारा निर्मित कार्माण शरीर ही जीवन का संचालक होता है। इस तथ्य से अनभिज्ञ होने के कारण ही संसार के प्राणी व्यर्थ में जीवन भर रोते-तड़पते रहते हैं।

इसी विषय में एक विद्वान ने इस प्रकार लिखा है हे जिनेन्द्र! चाहे मैंने आपके बारे में जाना भी चाहे मैंने आपकी पूजा स्तवन, भी किया चाहे मैंने आपके दर्शन भी किये किन्तु मैंने यह सब क्रियायें भक्ति भाव से नहीं कीं और आपको अपने हृदय में विराजमान नहीं किया। इसलिए आज मैं दुख भोग रहा हूं। क्योंकि भावशून्य क्रियायें फलवती नहीं होतीं।

९ – जैन धर्म बनाम आत्म धर्म अथवा विश्व धर्म

जन धम के अतिम तीथकर भगवान महावीर ने जिस धम का उपदेश दिया वह कोई नया धम नहीं था। उनसे पूव जो तईस तीथकर धम का स्वरूप बतला गये थे उसी का निरूपण उन्होंने किया था। उसी का नाम जन धम है। इसे आत्म धम भी कह सकते हैं क्योंकि जो आत्मा का धम है वही जन धम है और जो जैन धम है वही विश्व धम है। उन दोनों म कोई भेद नहीं है किन्तु मूढजन अपने स्वरूप को भूल कर बाह्य क्रिया काण्ड को ही धम मानकर उसी म रमे रहते हैं। उनकी दृष्टि अपनी ओर जाती ही नहीं। किन्तु महावीर का धम तो अन्तर्दृष्टि है, वही ग्राह्य है।

हम भगवान महावीर को अपने स्वाथ वश ही पूजते हैं। जस दीपक से दीपक जलता है इसी प्रकार शुद्ध आत्मा की आराधना से अशुद्ध दशा का नाम ससार है और शुद्ध दशा का नाम मोक्ष है। किन्तु अनादिकाल से अशुद्ध मे रहते-रहते यह जीव अपनी अशुद्ध दशा को ही वास्तविक मान बैठता है। उसे यह विचार ही नहीं आता कि वह जन्म और मरण का रोग मेरे पीछे लगा है इसम छूटने का उपाय मुझे करना चाहिए। भगवान महावीर का धम ही उस रोग से छूटने का उपाय है, शेष सभी ससार म भटकाने वाले हैं।

एकमात्र जिन द्र देव ही हैं जिनकी भक्ति के प्रसाद से लौकिक फल प्राप्ति होने के साथ ससार का भी अन्त आता है। एस जिन द्र देव के धम मे जन्म लेकर भी जो उन्हें भूलकर मिथ्या देवों को पूजते हैं, वे अभागे हैं। विश्व म मिथ्या देवों की कमी नहीं है कि तु सच्चा देव केवल जिने द्र देव ही है। उनकी ही शरण लेवें। जो दुःख सकट आते हैं वे हमारे ही पूव कृत कर्मों के कारण आते हैं। जब तक हमारे पाप का अन्त नहीं होगा तब तक कोई देवी-देवता हमारा सकट दूर नहीं कर सकता।

न तो कोई जीव को लक्ष्मी देता है और न कोई उसका उपकार करता है। शुभाशुभ कम ही जीव का उपकार या अपकार करता है। यदि भक्तिपूवक पूजा करने से व्यन्तर देव-देवी भी लक्ष्मी देते हैं तो फिर धम करने की

आवश्यकता क्या है ? जिस जिन मर्ति म प्रमाद स मुक्ति प्राप्त होती है वह जिन मर्ति लोक क छोटे मोटे कार्यों को क्या नही सिद्ध कर सकती है ?

प्रसिद्ध विद्वान श्री विरधीलाल जी सेठी क अनुसार शासन देवा की मा यता वाल बघु शासन दव श द का आशय मत हैं जैन शासन के व जन धर्मावलबियों के रक्षक दव । परन्तु जैन करणानुयोग के ग्रन्थों में अलग अलग प्रकार के दव बताये गये हैं । उनम स किसी भी प्रकार के देवों के लिए यह कथन नहा है कि य जन शासन क व धर्मात्माओं के रक्षक हैं । इस प्रकार जन करणानुयोग के ग्रथ क अनुसार तो शासन क रक्षक के रूप म काई दवी देवता ही नहीं है ।

अत भगवान महावीर के सच्चे धम के स्वरूप को समझकर हम किसी भी अ य दवी देवताओं के फन्दे म नहीं फसना चाहिए । यदि लौकिक कामना स ही पूजना है तो भी जिन द्र दव को ही पूजना चाहिए । जो भाइ बहिन लौकिक कामनावश शासनदेवों को न पूजकर महावीर जी, पद्मपुरा तिजारा आदि अतिशय क्षेत्रों म जाकर भगवान महावीर आदि तीथकरों को पूजा करते हैं । वे उत्तम हैं ।

डा० ज्योति प्रसाद जी क कथनानुसार आवश्यकता इस बात की है कि प्रत्यक आबाल वृद्ध स्त्री पुरुष धम क मम को जानन व समझने का प्रयत्न कर । अपने अन्त करणरूपी दीपक को माजकर विषय कषाय मल से शुद्ध करें उसम आस्था का शुद्ध स्नह पूरें अपनी जीवन रूपी बाती को शील सदाचरण उदारता दया और सहिष्णुता के सूता से बट कर आत्मज्योति को जगाए । एसा करन से उनका स्वय का तो जीवन प्रकाशमय एव सार्थक हो ही जायगा अ य भी जिनक सम्पक म व आयेंगे उनके जीवन को भी आलोकित कर दग । यह शान्तीप मोह एव अज्ञान दूर करता ही रहेगा ।

श्रीमती शान्ति प्रभा जन प्रो अमीरसन पब्लिशर्स डी 2/9 माडल टाउन दिल्ली 9 द्वारा नीरज प्रिंटस सी 15 माडल टाउन म मुद्रित ।

डा० मुनीन्द्र कुमार जैन का संक्षिप्त परिचय

जन्म—मोहल्ला दुवानी, खुर्जा (उ० प्र०) में 2 दिसम्बर 1930 को, जिस दिन श्री 108 आचार्य शान्तिसागर महाराज ने नगर में प्रवेश किया।

वंश—दिवानवाले, नकुड़ जिला सहारनपुर, वंशज राजा समाचंद, ताऊ फख्रेकौम बाबू सूरमान जैन वकील, (देवबंद वाले) पिता अमीर सिंह जैन भूतपूर्व डिप्टी कलेक्टर, आगरा।

शिक्षा—बी० एससी० (कृ०) साहित्यरत्न, साहित्यालंकार, एम० ए० (दर्शन) डिप जन (पंजाब) एलएल० बी० (दिल्ली) डी एच एस (आनर्स)।

पद्ों पर—हार्बट हाई स्कूल टांडा, बी० एन० हाई स्कूल अकबरपुर गव० जुबली हाई स्कूल गोरखपुर, यू० एन० के० हाई स्कूल पडरौना, गव० हाई स्कूल आगरा, सेंट जान हाई स्कूल आगरा, आर० ई० आई० कालेज दयाल बाग गव० एग्रीकल्चर कालेज कानपुर, पंजाब यू० क० कालेज नई दिल्ली, पंजाब यू० टिप० जन, नई दिल्ली, ला फेकल्टी दिल्ली विश्वविद्यालय।

व्यवसायिक सम्पादन—(1) विमान जगत (2) धरती के लाल, (3) एग्रीकल्चर न्यूजलेटर (4) एक्सटेंशन (5) विस्तार समाचार (6) एक्सटेंशन न्यूजलेटर (7) खेती (8) पशुपालन (9) इंड० पोटेटो जनल (10) इंड० जनल आफ एग्रो० एज्यू० (11) इंड० जनल आफ एनीमल साइंसेज।

धार्मिक सम्पादक—इन जन गजट, वीजेआई न्यूजलेटर, अमर साहित्य, जन रिपोटर, दिल्ली जन डायरेक्टरी, रत्नदीप, आदि।

मौलिक लेखन—अंग्रेजी में 100 लेख व 15 पुस्तकें, हिन्दी में 150 लेख एवं 20 पुस्तकें।

संस्था पद—निदेशक म० महावीर मेडिकल मिशन, जन यात्रा संघ व जैन सूचना ब्यूरो, मंत्री जन सभा धर्मार्थ ट्रस्ट, कार्य सद० जैन मित्र मंडल, प्रचार मंत्री दिल्ली प्रदेश जैन धर्म प्रचारिणी समिति, अवै० प्रधान भगवान महावीर धर्मार्थ होम्योपैथिक अस्पताल ट्रस्ट।

देश भ्रमण—काश्मीर से कन्याकुमारी, द्वारिका से रामेश्वरम, सीलम